



## 1. लेखक के अनुसार जीवन में 'सुख' से क्या अभिप्राय है?

**उत्तर:-** लेखक के अनुसार, जीवन में 'सुख' का अभिप्राय केवल उपभोग-सुख नहीं है। विभिन्न प्रकार के मानसिक, शारीरिक तथा सूक्ष्म आराम भी 'सुख' कहलाते हैं। परन्तु आजकल लोग केवल उपभोग के साधनों को भोगने को ही 'सुख' कहने लगे हैं।

## 2. आज की उपभोक्तावादी संस्कृति हमारे दैनिक जीवन को किस प्रकार प्रभावित कर रही है ?

**उत्तर:-** आज की उपभोक्तावादी संस्कृति हमारे दैनिक जीवन को पूरी तरह प्रभावित कर रही है। आजकल उपभोक्तावादी संस्कृति के प्रचार-प्रसार के कारण हमारी अपनी सांस्कृतिक पहचान, परम्पराएँ, आस्थाएँ घटती जा रही हैं। हमारे सामाजिक सम्बन्ध संकुचित होने लगा है। मन में अशांति एवं आक्रोश बढ़ रहे हैं। आज हर तंत्र पर विज्ञापन हावी है, परिणामतः हम वही खाते-पीते और पहनते-ओढ़ते हैं जो आज के विज्ञापन हमें कहते हैं। उपभोक्तावादी संस्कृति के कारण हम धीरे-धीरे उपभोगों के दास बनते जा रहे हैं। सारी मर्यादाएँ और नैतिकताएँ समाप्त होती जा रही हैं तथा मनुष्य स्वार्थ-केन्द्रित होता जा रहा है। विकास का लक्ष्य हमसे दूर होता जा रहा है। हम लक्ष्यहीन हो रहे हैं।

### **3. गाँधी जी ने उपभोक्ता संस्कृति को हमारे समाज के लिए चुनौती क्यों कहा है ?**

**उत्तर:-** गाँधी जी सामाजिक मर्यादाओं और नैतिकता के पक्षधर थे। गाँधी जी चाहते थे कि लोग सदाचारी, संयमी और नैतिक बनें, ताकि लोगों में परस्पर प्रेम, भाईचारा और अन्य सामाजिक सरोकार बढ़े। लेकिन उपभोक्तावादी संस्कृति इस सबके विपरीत चलती है। वह भोग को बढ़ावा देती है जिसके कारण नैतिकता तथा मर्यादा का हास होता है। गाँधी जी चाहते थे कि हम भारतीय अपनी बुनियाद और अपनी संस्कृति पर कायम रहें। उपभोक्ता संस्कृति से हमारी सांस्कृतिक अस्मिता का हास हो रहा है। उपभोक्ता संस्कृति से प्रभावित होकर। मनुष्य स्वार्थ-केन्द्रित होता जा रहा है। भविष्य के लिए यह एक बड़ी चुनौती है, क्योंकि यह बदलाव हमें सामाजिक पतन की ओर अग्रसर कर रहा है।

**आशय स्पष्ट कीजिए –**

**4.1. जाने-अनजाने आज के माहौल में आपका चरित्र भी बदल रहा है और आप उत्पाद को समर्पित होते जा रहे हैं।**

**उत्तर:-** उपभोक्तावादी संस्कृति का प्रभाव अप्रत्यक्ष हैं। इसके प्रभाव में आकर हमारा चरित्र बदलता जा रहा है। हम उत्पादों का उपभोग करते-करते न केवल उनके गुलाम होते जा रहे हैं बल्कि अपने जीवन का लक्ष्य को भी उपभोग करना मान बैठे हैं। आज हम भोग को ही सुख मान बैठे हैं।

## 4.2. प्रतिष्ठा के अनेक रूप होते हैं, चाहे वे हास्यास्पद ही क्यों न हो।

**उत्तर:-** सामाजिक प्रतिष्ठा विभिन्न प्रकार की होती है जिनके कई रूप तो बिलकुल विचित्र हैं। हास्यास्पद का अर्थ है- हँसने योग्य। अपनी सामाजिक प्रतिष्ठा को बढ़ाने के लिए ऐसे — ऐसे कार्य और व्यवस्था करते हैं कि अनायास हँसी फूट पड़ती है। जैसे अमरीका में अपने अंतिम संस्कार और अंतिम विश्राम-स्थल के लिए अच्छा प्रबंध करना ऐसी झूठी प्रतिष्ठा है जिसे सुनकर हँसी आती है।

### • रचना-अभिव्यक्ति

**5. कोई वस्तु हमारे लिए उपयोगी हो या न हो, लेकिन टी.वी. पर विज्ञापन देख कर हम उसे खरीदने के लिए अवश्य लालायित होते हैं। क्यों ?**

**उत्तर:-** विज्ञापनों का प्रभाव अत्यंत सूक्ष्म तथा सम्मोहक होता है। विज्ञापन की भाषा बहुत ही मोहक होती है। प्रचार तंत्र वाले अपनी चिकनी-चुपड़ी बातों, दृश्यों और ध्वनियों के माध्यम से हमें प्रभावित करते हैं। अधिकतर विज्ञापन हमारे अन्दर भ्रम और उस वस्तु के प्रति आकर्षण पैदा करता है। हम वही खरीदते हैं जो विज्ञापन हमें दिखाता है। विज्ञापन से हम अनुपयोगी वस्तुएँ खरीदने के लिए लालायित हो जाते हैं।

**6. आपके अनुसार वस्तुओं को खरीदने का आधार वस्तु की गुणवत्ता होनी चाहिए या उसका विज्ञापन ? तर्क देकर स्पष्ट करें।**

**उत्तर:-** निश्चित रूप से वस्तुओं को खरीदने का आधार उनकी गुणवत्ता होनी चाहिए, क्योंकि-

1. अधिकतर विज्ञापन हमारे मन में वस्तुओं के प्रति भ्रामक आकर्षण पैदा करते हैं।
2. अधिकतर विज्ञापन आकर्षक दृश्य दिखाकर गुणहीन वस्तुओं का प्रचार करते हैं।
3. विज्ञापनों के माध्यम से हम किसी वस्तु के गुण-दोष की सच्चाई नहीं जान सकते हैं ।

**7. पाठ के आधार पर आज के उपभोक्तावादी युग में पनप रही “दिखावे की संस्कृति” पर विचार व्यक्त कीजिए।**

**उत्तर:-** यह बात बिल्कुल सच है की आज दिखावे की संस्कृति पनप रही है। आज लोग अपने को आधुनिक से अत्याधुनिक और कुछ हटकर दिखाने के चक्कर में क्रीमती से क्रीमती सौंदर्य-प्रसाधन, म्यूज़िक-सिस्टम, मोबाईल फोन, घड़ी और कपड़े खरीदते हैं। समाज में आजकल इन चीज़ों से लोगों की हैसियत आँकी जाती है। यहाँ तक कि लोग मरने के बाद अपनी कब्र के लिए लाखों रूपए खर्च करने लगे हैं ताकि वे दुनिया में अपनी हैसियत के लिए पहचाने जा सकें। यह दिखावे की संस्कृति नहीं तो और क्या। “दिखावे की संस्कृति” के बहुत से दुष्परिणाम अब सामने आ रहे हैं। इससे हमारा चरित्र स्वतः बदलता जा रहा है। हमारी अपनी सांस्कृतिक पहचान, परम्पराएँ, आस्थाएँ घटती जा रही है। हमारे सामाजिक सम्बन्ध संकुचित होने लगा है। मन में अशांति एवं आक्रोश बढ़ रहे हैं। नैतिक मर्यादाएँ घट रही हैं। व्यक्तिवाद, स्वार्थ, भोगवाद आदि कुप्रवृत्तियाँ बढ़ रही हैं।

\*\*\*\*\* END \*\*\*\*\*